मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।३४।।

मन्मनाः=मन से नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाला; **भव**=हो; **मत्**=मेरा; **भक्तः**=भक्त (हो); **मत्**=मेरा; **याजी**=पूजन कर; **माम्**=मुझे; **नमस्कुरु**=दण्डवत् प्रणाम कर; **माम्**=मुझको; **एव**=ही; **एष्यसि**=प्राप्त होगा; **युक्त्वा एवम्**=इस प्रकार युक्त होकर; **आत्मानम्**=अपने आत्मा से; **मत्परायणः**=मेरी शरण हुआ।

अनुवाद

मन से नित्य-निरन्तर अनन्य भाव से मेरा चिन्तन कर, मेरा भक्त बन, मेरा ही पूजन कर और अतिशय प्रेम सहित मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार पूर्ण रूप से मुझमें तन्मय हुआ तू मुझ को ही प्राप्त होगा।।३४।।

तात्पर्य

इस श्लोक में निर्णय है कि इस दूषित प्राकृत-जगत् के बन्धनों से मुक्ति का एकमात्र साधन कृष्णभावना है। यद्यपि यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि सम्पूर्ण भक्तियोग के लक्ष्य श्रीकृष्ण हैं; परन्तु दुर्भाग्यवश, असाधु व्याख्याकार इस अति स्पष्ट तथ्य को तोड़-मरोड़ कर पाठक का चित्त बिल्कुल असाध्य कुपथ में मोड़ देते हैं। ये व्याख्याकार नहीं जानते हैं कि श्रीकृष्ण के चित्त और स्वयं श्रीकृष्ण में भेद नहीं है। श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य नहीं हैं; वे परतत्त्व पुरुषोत्तम हैं। उनके देह, चित्त और स्वयं वे एकतत्त्व हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत, आदिलीला, अध्याय पाँच, श्लोक ४१-४८ पर अपने अनुभाष्य में श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ने 'कूर्म पुराण' में यह प्रमाण उद्धृत किया है: **देह देहि विभेदोऽयं नेश्वरे विद्यते क्वचित्**, अर्थात् परमेश्वर श्रीकृष्ण में और उनके देह में कोई भेद नहीं है। इस कृष्णतत्त्व को न जानने वाले व्याख्याता शब्दों की चातुरी से श्रीकृष्ण को छिपाते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण का यथार्थ स्वरूप उनके देह और मन से अलग है। ऐसा कहना कृष्णतत्त्व के नितान्त अज्ञान का प्रतीक है, पर कुछ मनुष्य तो इस प्रकार जनता को पथभ्रष्ट करके ही बड़ा भारी धन अर्जित कर लेते हैं।

कुछ आसुरीभाव वाले मनुष्य हैं। वे भी श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हैं, परन्तु उनका वह चिन्तन कंस की भाँति द्वेषपूर्वक होता है। कंस वैरी-रूप में श्रीकृष्ण के चिन्तन में निरन्तर तन्मय रहता था। उसे सदा यही चिन्ता बनी रहती थी कि कहीं श्रीकृष्ण इसी क्षण उसे मारने न आ जायें। इस प्रकार के प्रतिकूल चिन्तन से लाभ नहीं हो सकता। अतएव श्रीकृष्ण का चिन्तन प्रेमभाव से करे; इसी का नाम 'भक्ति' है। श्रीकृष्णतत्त्व का नित्य अनुकूल अनुशीलन (सेवन) करते रहना चाहिए। प्रामाणिक गुरु के आश्रय में शिक्षा ग्रहण करना ही श्रीकृष्णतत्त्व का अनुकूल अनुशीलन (सेवन) है। हम बहुधा विवेचन कर चुके हैं कि श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, उनका विग्रह प्राकृत नहीं है, सच्चिदानन्दघन है। इस प्रकार की वार्ता भक्त बनने में सहायक है। दूसरी ओर, अवाँछित व्यक्तियों से श्रीकृष्ण के तत्त्व को समझना निरर्थक है।